International Journal of Applied Research 2018; 4(7): 394-396

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2018; 4(7): 394-396
www.allresearchjournal.com
Received: 27-05-2018
Accepted: 29-06-2018

डॉ. रामपाल
संस्कृत विभाग
के0ए0 (पी0जी0) कॉलेज,
कासगंज, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence
डॉ. रामपाल
संस्कृत विभाग
के0ए0 (पी0जी0) कॉलेज,
कासगंज, उत्तर प्रदेश, भारत

शाकटायन व्याकरण में पाणिनीयेतर प्रयोग तथा पाणिनि से प्रक्रियाभेद

डॉ. रामपाल

शोध सारांश
ईसा की नवीं शताब्दी में रचित पाल्यकीर्ति शाकटायन शब्दानुशासन में 3200 सूत्र है। पाणिनीय शैली पर रचा गया यह व्याकरण पाणिनिय शैली से किंचित् भिन्न है परन्तु यह पूर्ण प्रक्रिया ग्रन्थ नहीं है। अपने से पूर्ववर्ती वैयाकरणों का अनुसरण करते हुए भी शाकटायन ने सूत्रों में मौलिकता लाने का प्रयास किया है। शाकटायन व्याकरण का प्रणयन का उद्देश्य विशेषतः संक्षेपीकरण एवं जैन धर्म का प्रचार–प्रसार करना है।

कुटशब्दः शाकटायन व्याकरण, पाणिनीयेतर प्रयोग, पाणिनि, प्रक्रियाभेद

प्रस्तावना
भाषा परिवर्तनशील है, वह देशकाल के अनुरूप परिवर्तित एवं परिवर्द्धित होती रहती है। परम्परागत शब्दों का निरूपण करते हुए वैयाकरण अपने समय में प्रयुक्त होने वाले नवीन शब्दों को भी नियमों द्वारा निबद्ध करने का प्रयत्न करते हैं।
यही कारण रहा है कि पाणिनि के पश्चात् भी समय–समय पर अनेक वैयाकरण हुए, जिन्होंने अपने समय की भाषा के स्वरूप को सुरक्षित रखने के लिए पृथक्–पृथक् व्याकरणों की रचना की।
इन्हीं आचार्यों में पाल्यकीर्ति शाकटायन का नाम सम्मान के साथ लिया जाता है। इन्होंने तत्कालीन समय में कई ऐसे शब्द थे जिनका वर्णन शाकटायन के अतिरिक्त किसी ने नहीं किया था। ऐसे ही कई शब्दों का विवेचन विस्तार से द्रष्टव्य है–
शाकटायन व्याकरण में पदान्त में वर्तमान दीर्घ प्लुत के परे छकार को विकल्प से द्वित्व का विधान किया है। [1] जबकि पाणिनि ने इस प्रकार का कोई नियम नहीं दिया है। [2]
शाकटायन व्याकरण में 'युष्मद्' एवं 'अस्मद्' शब्दों के चतुर्थी, पंचमी एवं षष्ठी विभक्ति बहुवचन के रूपों का निर्देश करते हुए उपर्युक्त शब्दों के प्रकार का विकल्प से लोप किया है। [3] इस प्रकार युष्मभ्यं, अस्मभ्यं, युष्मदः, अस्मदः युष्माकम् तथा अस्माकम् शब्द रूपों के साथ–साथ शाकटायन व्याकरण में क्रमशः युष्भ्यम्, अस्मभ्यम्, युषद्, असद्, युषाकम् तथा असाकम् शब्द रूप भी सिद्ध किये हैं। किन्तु लौकिक संस्कृत में प्रचलित न होने के कारण 'युषभ्यम्' आदि वैकल्पिक रूपों का कोई विशेष महत्व नहीं है।
'प्रसति' तथा 'उत्सुक' शब्दों के योग में पाणिनि ने (प्रसितोत्सुकाभ्यां तृतीया च अष्टा0 2.3.44) चन्द्रगोमी ने (2.1.92 चा0व्या0) एवं पूज्यपाद देवनन्दी ने (प्रसितोत्सुकाभ्यां च0 जै0व्या0 1.4.52) विकल्प से तृतीया तथा सप्तमी विभक्तियों का विधान किया है। कातन्त्र परिशिष्ट में भी 'प्रसति' तथा 'उत्सुक' शब्दों के लोप में तृतीया एवं सप्तमी विभक्तियों के प्रयोग का निर्देश किया गया है। [4] जबकि शाकटायन ने 'प्रसति' एवं 'उत्सुक' शब्दों के साथ–साथ 'अववद्ध' शब्द के योग से भी अप्रधान आधारवाची शब्द से विकल्प से टा, भ्यां, भिस् प्रत्ययों का विधान किया है। [5] इस प्रकार शाकटायन ने कारक प्रकरण में 'केशैश्ववद्धः' एवं 'केशेश्ववव;' नवीन प्रयोगों को स्थान दिया है।
पाणिनि ने अष्टाध्यायी में (अपे च लषः। अष्टा0 3.2.144) अप एवं वि उपसर्ग लष् धातु से तच्छीलादि अर्थ में घिनुण् प्रत्यय का विधान करके 'अपलाषी' एवं 'विलाषी' कृत्रूपों की सिद्धि की है। इसके अतिरिक्त कातंत्र व्याकरण में (वौ विच् कथ..... कष् (लस) लषाम् का0व्या0कृ0प्र0 269) चान्द्रवृत्ति (1. 2.96), जैनेन्द्र व्याकरण (अपे च लषः। चा0व्या0 2.2.121) में भी क्रमशः घिनिण्, घिनुण् एवं घिनिण् प्रत्ययों द्वारा 'अपलाषी' एवं 'विलाषी' कृत्रूपों की सिद्धि की है। जबकि शाकटायन ने तच्छीलादि अर्थ में 'अप्' एवं वि उपसर्गपूर्वक 'लप्' धातु से (लपोऽषे च। शा0व्या0 4.3.246) घिनञ् प्रत्यय का विधान करके अपलाषी एवं विलापी नवीन शब्दों का निर्माण किया है।
पाणिनि ने अष्टाध्यायी में (सूत्रं प्रतिष्णातम् 8.3.90) (सूत्र) तन्तु अर्थ में प्रति उपसर्गपूर्वक स्ना धातु के सकार के स्थान पर षत्व करके प्रतिष्णातम् शब्द की निपातन से सिद्धि की है। चन्द्रगोमी ने भी प्रति उपसर्गपूर्वक 'स्नात' शब्द के सकार को सूत्र अर्थ में (प्रतेः सूत्रे चा0व्या 06.4.78) षत्व का विधान

किया है। जबकि शाकटायन ने (प्रति + स्नात) में स्नात को ष्णात् आदेश किया है–– (प्रतेः ष्णातं सूत्रे। शा0व्या0 2.2.152) इसके साथ ही साथ किसी सूत्र विशेष का वाची होने पर प्रति उपसर्गपूर्वक 'स्नान' उत्तरपद को 'ष्णान' आदेश का भी विधान किया है। शाकटायन से पूर्ववर्ती वैयाकरणों ने प्रतिष्णान शब्द की सिद्धि के लिए कोई नियम नहीं दिया है। [6]

पाणिनि ने 'उमाव्यासकम्' एवं 'ऐषकम्' की सिद्धि हेतु कोई नियम नहीं दिया है। जबकि शाकटायन ने 'उमाव्यास' एवं 'ऐषमस्' कालवाची सप्तम्यन्त शब्दों से देयऋण अर्थ में 'अक' प्रत्यय करके उपरोक्त रूपों की सिद्धि की है। [7]

'अन्तःपुरिका' की सिद्धि हेतु अष्टाध्यायी में कोई मत प्राप्त नहीं है, जबकि शाकटायन ने 'अन्तःपुर' शब्द से रूढि अर्थ में 'ठः' प्रत्यय के योग से उपर्युक्त रूप की सिद्धि की है। [8]

पाणिनि ने 'तन्मयी' एवं 'भवन्मयी' शब्दों की सिद्धि हेतु कोई नियम नहीं दिया है। जबकि शाकटायन ने 'मयट्' प्रत्यय के योग से 'प्रभवति' अर्थ में उपुर्यक्त रूपों की सिद्धि की है। [9]

पाणिनि ने 'अद्यप्रातीन्' शब्द की सिद्धि नहीं की है, जबकि शाकटायन ने निपातन से इसकी सिद्धि की है। [10]

पाणिनि ने 'कुलात्खः।' [11] सूत्र से अपत्यार्थ में 'खः' प्रत्यय के संयोग से 'कुलीन' शब्द की सिद्धि की है। जबकि शाकटायन ने इस शब्द के अतिरिक्त 'जल्पार्थ' में ;कुलाज्जल्पे' [12] सूत्र से 'कौलीन' शब्द की सिद्धि की है।

पाणिनि ने 'शर्वशरावीण' शब्द की सिद्धि के लिए अष्टाध्यायी में कोई नियम नहीं दिया है। जबकि शाकटायन ने 'शराब' सर्वशब्द से व्याप्नोति अर्थ में 'खः' प्रत्यय का विधान करके 'शर्वशरावीण' शब्द की सिद्धि की है। [13]

पाणिनि ने 'यथाकामीन' शब्द की सिद्धि हेतु कोई नियम नहीं दिया है। जबकि शाकटायन ने 'यथाकाम' शब्द से गामी अर्थ में 'खः' प्रत्यय के योग से उपर्युक्त रूप की सिद्धि की है। [14]

पाणिनि ने 'कठिनान्तप्रस्तारसंस्थानेषुव्यवहरति' (अष्टा0 4.4.72) सूत्र से कठिनान्त शब्दों तथा प्रस्तार एवं संस्थान शब्दों से 'व्यवहरति' अर्थ में 'ठक्' प्रत्यय का विधान करके 'वांशकठिनिकः', 'प्रास्तारिक' एवं सांस्थानिकः शब्दों की सिद्धि की है। जबकि शाकटायन ने उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त 'प्रस्तारान्त' एवं संस्थानान्त शब्द 'संस्थानप्रस्तारतदन्तकठिनान्तेषु व्यवहरति' (शा0व्या0 3.2.25) सूत्र से 'ठण्' प्रत्यय का विधान किया है। इसके फलस्वरूप शाकटायन व्याकरण में 'आश्वसंस्थानिकः' एवं 'कांसप्रस्तारिकः' शब्दों की भी सिद्धि की गई है।

पाणिनि व्याकरण में 'अर्धपलिकम्' एवं 'अर्धकर्षिकम्' शब्दों के लिए कोई नियम नहीं है। जबकि शाकटायन ने 'अर्धात्पलकंसकर्षात्' (शा0व्या0 3.2.131) सूत्र से 'अर्ध' उपपद पूर्वक पल एवं कर्ष शब्दों से 'ठट्' प्रत्यय का विधान करके उपर्युक्त शब्दों की सिद्धि की है।

पाणिनि ने 'कृपालु' शब्द की सिद्धि हेतु कोई नियम नहीं दिया है। जबकि शाकटायन ने 'कृपाह्रदयादालुः' (शा0व्या0 3.3.138) कृपा शब्द से आलुः प्रत्यय लगाकर 'कृपालुः' शब्द की रूपसिद्धि की है।

आचार्य पाणिनि ने 'काण्डाण्डादीरन्नीरचौ' (अ0 5.2.111) सूत्र से इर् प्रत्यय लगाकर 'काण्डीरः', 'आण्डीरः', 'अण्डीरः' (पाठभेद से) शब्दों की सिद्धि की है तथा 'भाण्डीरः' की सिद्धि के लिए कोई नियम नहीं दिया है। जबकि शाकटायन ने 'काण्ड', 'आण्ड' एवं 'भाण्ड' शब्दों से 'काण्डाण्डभाण्डादीरः' (शा0व्या0 3.3.134) सूत्र द्वारा 'भाण्डीरः' [15] शब्द की सिद्धि की है।

पाणिनि ने अष्टाध्यायी में 'कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः' (अष्टा0 5.3.88) सूत्र द्वारा शमी शब्द से ह्रस्वार्थद्योतन के लिए 'रः' प्रत्यय के योग से 'शमीरः' शब्द की सिद्धि की है। जबकि शाकटायन ने उपर्युक्त अर्थ में 'शमी' शब्द से 'रु' एवं 'र' प्रत्यय लगाकर 'समीरः' शब्द के साथ 'शमीरु' शम्यारूरौ (शा0व्या0 3.4.101) की भी सिद्धि की है।

अष्टाध्यायी [16] चान्द्रव्याकरण [17] एवं जैनेन्द्र व्याकरण [18] में 'तेन चरति' अर्थ में पर्पादि शब्दों से 'ष्ठन्' अथवा 'ठट्' प्रत्यय होकर 'पर्पिकः', 'अश्विकः' इत्यादि शब्द बनते हैं। जबकि शाकटायन ने उपर्युक्त अर्थ में भिन्न प्रत्यय 'ठण्' लगाकर 'पार्पिकः', 'आश्विकः' आदि तद्धितान्त शब्दों की सिद्धि की है।

अष्टाध्यायी, चान्द्रव्याकरण एवं जैनेन्द्र व्याकरण में 'अर्हति' अर्थ में पात्र एवं यज्ञ शब्दों से 'घन्' अथवा 'घ' प्रत्यय का विधान करके 'पात्रिय' एवं 'यज्ञिय' शब्दों की सिद्धि की है। जबकि शाकटायन ने उपर्युक्त अर्थ में छः प्रत्यय के योग से 'पात्रीय' एवं 'यज्ञीय' शब्द सिद्ध किये हैं।

उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त भी शाकटायन के कई नवीन प्रयोग स्थल हैं। यथा–

1. सांकोटिनम्। शा0व्या0 1.1.60
2. वाक्त्वम्। शा0व्या0 1.1.64
3. प्रेजुः, प्रोपुः। शा0व्या0 1.1.77
4. सुखऋतुः, दुखऋतः। शा0व्या0 1.1.89
5. रवषीरं, अप्सराः। शा0व्या0 1.1.114

सरलता की दृष्टि से भाषा चिन्तन

शाकटायन की सूत्र शैली सरल प्रतीत होती है ऐसा उनके अनेक प्रयोगों से स्पष्ट है।

'पंचकृत्वः', 'दशकृत्वः' आदि प्रत्ययों में गुणित या अभ्यावृत्ति की गणना के लिए पाणिनि ने कृत्वसुच् (अष्टा0 3.2.17) प्रत्यय का विधान किया है, जबकि शाकटायन ने वारेकृत्वस (शा0व्या0 3.4. 32) यह सूत्र रचा है। 'अभ्यावृति गणना' शब्द के स्थान पर 'वार' शब्द का प्रयोग आधुनिक है।

पाणिनि ने 'अभूत्तद्भाव' अर्थ में च्वि प्रत्यय का प्रयोग 'उर्य्यादिच्विडाचश्च' (अष्टा0 1.4.31) सूत्र में किया है, जबकि शाकटायन ने 'कर्मकर्तृभ्यां प्रागतत्तत्वकृत्वे' (शा0व्या0 3.4.55) अर्थात् पाणिनि के अभूततदभाव की अपेक्षा 'प्राग् अतस्यतत्वम्' आधुनिक है।

पाणिनि ने वैदिक शब्दों की निष्पत्ति हेतु लिट् लकार में ही क्वसु (अष्टा0 3.2.107) और कानच् (अष्टा0 3.2.106) प्रत्ययों का प्रयोग किया है। आगे चलकर कवियों एवं लेखकों ने लौकिक भाषा में भी क्वसु और कानच् प्रत्यय घटित शब्दों के प्रयोग का आरम्भ कर दिया था। यह देखकर केवल लौकिक भाषा के व्याकरण का निर्माण करने वाले इस शाकटायन ने भी अपने व्याकरण में भी क्वसु और कानच् का विधान कर दिया।

प्रक्रियागत सरलता

सुखार्तः (सुख + ऋतः), दुखार्तः (दुख + ऋतः), प्रार्णम् (प्र + ऋण), वत्सरार्णम् (वत्सर + ऋणम्), कम्वलार्णम् (कम्वल + ऋणम्), वसर्नाणम् (वसन् + ऋणम्), ऋणार्णम् (ऋण + ऋणम्), दर्शाणम् (दश + ऋणम्), उपार्ध्नोति (उप ऋध्नोति), प्रार्ध्नोति (प्र + ऋध्नोति), उपार्च्छति (उप + ऋच्छति), प्रार्च्छति (प्र + ऋच्छति), उपार्षमीयति (उप ऋषमीयति), उपाल्कारीयति (उप + लृकारीयति) इत्यादि सन्धिरूपों की सिद्धि अष्टाध्यायी में [19] अधोलिखित सूत्रों एवं वार्तिकों के माध्यम से की गई है।

शाकटायन व्याकरण में उपर्युक्त रूपों की सिद्धि प्रक्रिया सरल है। शाकटायन ने उपर्युक्त शब्दों की सिद्धि में पूर्वपद के अन्तिम आकार तथा उत्तरपद के आरम्भ में विद्यमान ऋकार के स्थान पर 'आर्' एकादेश किया है। [20]

इस प्रकार जिस प्रक्रिया सिद्धि हेतु पाणिनि ने दो नियमों का आश्रय लिया। उसको शाकटायन ने एक ही नियम द्वारा सिद्ध कर लिया।

उत्थाता पद की सिद्धि में पाणिनि [21] ने सर्वप्रथम (उद् + स्थाता) सकार को थकार (उद्थ्याता) पूर्ववर्ती थकार का लोप (उद् + थाता) दकार को चर्त्वादेश करके 'उत्थाता' सन्धिरूप की सिद्धि की है। जबकि शाकटायन ने सर्वप्रथम (उद् + स्थाता) स्थिति में 'ऽस्था' धातु के सकार का लोप किया है। [22] (उद् + थाता) इसके बाद उद् के दकार को तादेश (चरादेश) करके (उत् +

थाता) उत्थाता रूप बनाया है। सरलता की दृष्टि से यह प्रक्रिया महत्वपूर्ण है।

पटिति (पटत् + इति) घटिति (घटत् + इति) आदि संधिरूपों की सिद्धि में पाणिनि ने (अव्यक्तानुकरणस्यात् इतौ अष्टा0 6.1.98) अत् तथा इकार के स्थान पर पररूप एकादेश किया है। जबकि शाकटायन ने पररूप एकादेश न करके (डाज्भाजोऽतोलुगितौ शा0व्या0 1.1.127) अन्त्याजादि टि (अट्) लोप किया है। (पटत् + इति; पट् + इति = पटिति)। यद्यपि शाकटायन की इस प्रक्रिया द्वारा कोई विशेषता नहीं आ पाई है। केवल सन्धिपद के निर्माण की विधि में भिन्नता का सन्निवेश मात्र हो पाया है।

'श्वलिट्त्साथे एवं भवान्त्साथे' इत्यादि सन्धिपदों की सिद्धि में पाणिनि ने सर्वप्रथम धुडागम [23] (श्वलिट् + धुट + साथे) (भवान् + धुट् + साथे) इसके बाद (नश्च। 8.3.3; खरि च। 8.4.55) चर्त्वदेश करके उपर्युक्त संधि रूप की सिद्धि की है। जबकि शाकटायन व्याकरण में सीधे ही (भवान् + तड् + साथे; श्वलिट् + तड् + साथे) तडागम [24] करके उपर्युक्त सन्धिपद सिद्ध किया है। जिसके फलस्वरूप शाकटायन व्याकरण में चर्त्व आदेश विधायक सूत्र नहीं लगाना पड़ता। इस प्रकार शाकटायन ने एक भिन्नगम का प्रयोग करके प्रक्रिया लाघव दर्शाया है।

'गो' शब्द के द्वितीया विभक्ति एकवचन के 'गाम्' शब्दरूप की सिद्धि में पाणिनि [25] एवं चन्द्रगोमी [26] ने (गो + अम्) गो शब्द के ओकार तथा 'अम्' प्रत्यय के अकार के स्थान पर आकारादेश किया है। (गो + अम् = ग् + आम् = गाम्)। शर्ववर्मा [27] एवं पूज्यपाद देवनन्दी [28] ने सर्वप्रथम 'गो' शब्द के ओकार का आकारादेश किया है (गो + अम् = गा + अम्) तथा सवर्णदीर्घ (गा + अम् = गाम्) करके गाम् शब्दरूप की सिद्धि की है। जबकि शाकटायन ने 'अम्' प्रत्यय के अकार के स्थान 'डा' आदेश का विधान किया है। (गो + अम् = गो + आम) [29] तथा 'डित्' परे होने के कारण गो शब्द के ओकार का लोप होकर (गो + आम् = ग् + आम् = गाम्) [30] गाम् रूप सिद्ध हुआ है। [31]

'उशनस्' शब्द के प्रथमा विभक्ति एकवचन में 'उशना' शब्द रूप की सिद्धि में पाणिनि [32], चन्द्रगोमी [33] तथा पूज्यपाद देवनन्दी [34] ने पहले अनङ् आदेश किया है। ङित् होने के कारण यह आदेश अन्त्यवर्ण के स्थान पर आया है (उशनस् + सु = उशन् + अनङ् + स) तथा पररूप, गुण (उशनन् + सु) उपधावृद्धि (उशनान् + सु) सु प्रत्यय का लोप (उशनान्) एवं नकार लोप (उशना) करके 'उशना' शब्दरूप की सिद्धि की है।

'मण्डनः' शब्द की सिद्धि में अष्टाध्यायी (क्रुधमण्डार्थेभ्यश्च; युवोरनाकौ क्रमशः 3.2.151; 7.1.1) कातंत्रव्याकरण (क्रुधिमण्डिवलिशब्दार्थेभ्यो युःख यु वुझामनाकान्ता; क्रमशः। कृ0प्र0 275, 484) चान्द्रव्याकरण (क्रुधभूषार्थात् युवो इनाकावसः, क्रमशः 1. 2.100, 5.4.1) जैनेन्द्रव्याकरण (क्रुधमण्डार्थात् युवोरनाकौ क्रमशः 2. 2.133, 5.1.1) में मण्ड् धातु से यु (च्) प्रत्यय का विधान किया गया है। तत्पश्चात् यु को अनादेश करके 'मण्डनः' कृदन्त रूप सिद्ध हुआ है। जबकि शाकटायन व्याकरण में सीधे धातु से (क्रुदभूषार्थसृगृधज्वल्जुशुभश्चानः। 4.3.235) सूत्र द्वारा अन् प्रत्यय का विधान का उपर्युक्त रूप को सिद्ध किया है। उपर्युक्त प्रक्रिया में सरलता एवं लाघव है।

पाणिनि [35] चन्द्रगोमी [36] तथा पूज्यपाद देवनन्दी [37] ने संख्यावाची शब्द 'सम्' तथा 'भद्र' शब्दों से परे 'मातृ' शब्द के ऋकार के स्थान पर उकार तथा तत्पश्चात् 'अण्' प्रत्य, का विधान किया है। यथा (द्विमातृ + अण् = द्विमात् + उ + अण्) इसके बाद आदि स्वर को वृद्धि तथा उकार को रपर् करके (द्विमात् + उर् + अ = द्वैमातुरः) द्वैमातुरः, सामातुरः तथा भाद्रमातुरः शब्द सिद्ध किये हैं। जबकि शाकटायन ने उपर्युक्त स्थिति में मातृ शब्द के ऋकार को ङुकर आदेश तथा 'अण्' प्रत्यय का विधान किया है (द्वि + मातृ + अण् = द्विमात् ङर् अ) [38] इसके बाद (आरैचोऽक्ष्वादेः। शा0व्या0 2.3.84) सूत्र से आदि स्वर को वृद्धि करके उपर्युक्त रूपों की सिद्धि हुई है। इस प्रकार शाकटायन ने एक सूत्र कम लगाकर उपर्युक्त रूप सिद्ध किये हैं।

संदर्भ

1. आगच्छ भो इन्द्र अग्निभूते चा३च्छत्रमानय। आगच्छ भो इन्द्र भूतेचाछत्रमानय।। शा0व्या0अ0 1.1.125।
2. अप्लुतवदुपस्थिते। पा0अ0 6.1.125 : छे च। 6.1.73।
3. मकारान्तयोः युष्मद्स्मदोस्तत्सम्बन्धिन्यन्यसम्बन्धिनि वा सुपि परे वा लुग्भवति। युष्मानाचक्षाणेभ्यो युष्मभ्यं, युषभ्यं। शा0व्या0 अमोघावृति,
4. 1.2.182।
5. का0व्या0 पूर्वार्द्ध : पृष्ठ 481।
6. प्रसिताऽववद्धोत्सुकैः : शा0व्या0 1.3.132।
7. जैनाचार्यों को संस्कृत व्याकरण को योगदान : प्रभा कुमारी : पृष्ठ 173।
8. कलाप्यश्वत्थयववुसोमाव्यासैषमसोऽकः : शा0व्या0 3.1.107।
9. ठोऽन्तः पुराद् रूढौ। : शा0व्या0 3.1.128।
10. तदार्दमयट् : शा0व्या0 3.1.167।
11. प्रोवरीणपरम्परीणपुत्रपौत्रीणसर्वान्रीनायानयीनानुपदीनागवीनाद्यश वीनाद्यप्रातीनसमांसमीनसाप्तपदीनम्। : शा0व्या0 3.3.59।
12. पा0अ0 4.1.139।
13. शा0व्या0 3.3.32।
14. सर्वादेः पथांगकर्मपत्रपात्रशरावाद्वयापिनि। : शा0व्या0 3.3.53।
15. यथाकामानुकामात्यन्तपारावारपारागामिनि। : शा0व्या0 3.3.35।
16. वणिङ्मूलधने पात्रे भाण्डं भूषाश्वभूषयोः। : शा0व्या0 3.3.134 अमोघावृत्ति।
17. पर्पादिभ्यः ष्ठन्। : अष्टा0 4.4.10।
18. पर्पादिभ्यः ष्ठन्। : चा0व्या0 3.4.8।
19. पर्पादेष्ठट्। : जै0व्या0 3.3.133।
20. ऋते च तृतीया समासेऽवर्णाद् वृद्धिवक्तव्याः प्रवत्सरकम्वलवसनानामृणेवृद्धिवक्तव्याः, उपसर्गादृतिधातोः। उरण् रपरः। : अष्टा0 6.1.89 : वा0 6.1.91; 6.1.92; 1.151।
21. आतृतीयाया ऋते; प्रदशार्णवसनकम्वलवत्सतरस्यर्णे; ऋत्यारुपसर्गस्यः; सुपिवा; : शा0व्या0 1.1.89; 91; 92; 11।
22. उदःस्थास्तम्भौःपूर्वस्य। : अष्टा0 8.4.61, झरोझरि सवर्णे। : 8. 4.65; 8.4.55।
23. उदस्थास्तम्भः। : शा0व्या0 1.1.134; चर : वही : 1.1.135।
24. ङसि धुट्। : अष्टा0 8.3.29।
25. ङनस्तट् सोऽश्च। : शा0व्या0 1.1.146।
26. ओतोऽम्शसोः। : अष्टा0 6.1.93।
27. ओतोऽम्शसोरात्। : चा0व्या0 5.1.92।
28. अमशसोरा; समान; सवर्णेदीर्घोभवति, परश्च लोपम्। : का0व्या0च0प्र0 111 : पृ0 24।
29. टोतः स्वेऽकोदीः; जै0व्या0 4.3.88।
30. डाप्शसः। शा0व्या0 1.2.118।
31. डित्यन्त्याजादेः। वही 1.2.107।
32. जैनाचार्यों का संस्कृत व्याकरण को योगदान : पृ0 153।
33. ऋदुशनस्पुरुदंशोऽनेहसां च।; ङिच्च; अतोगुणे सर्वनामस्थानेचासंबुद्धौः हलङ। नलोप : अष्टा0 7.1.94, 1.1. 53, 6.1.97, 6.4.8, 6.1.98, 8.2.7।
34. चा0व्या0 5.4.45, 1.1.11, 5.1.101, 5.3.10, 5.1.15, 6.3.48।
35. जै0व्या0 5.1.71, 1.1.50, 4.3.84, 4.4.6, 4.3.56, 5.30।
36. मातुरुत्संख्यासंभद्रपूर्वायाः। अष्टा0 4.1.115, तद्धितेन्वचामादेः 7.2.117, उरनरपरः 1.1.15।
37. मातुरुत्संख्यासंभद्रादेः। चा0व्या0 2.4.45, किति चापत्यादावचामादेः 6.1.11, ऋकोऽणो, रत्नौ 1.1.15।
38. मातुरुत्संख्यासंभद्रादेः। जै0व्या0 3.1.104, ह्रयचामादेः 5.2.5, रन्तोऽणुः 1.1.45।
39. संख्यासंभद्रत्मातुङुर। : शा0व्या0 2.4.51।